लेखक परिचय

डॉ. हरिओम

जीन्द (हरियाणा) के ग्रामीण आंचल में 10 जनवरी 1959 को जन्में तथा कृषक परिवार की पृष्ठभूमि में आरम्भिक शिक्षा के बाद पी. एच.डी. (सस्य विज्ञान) की डिग्री चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त की। डिग्री हेतू किए गए संकर धान पर उत्तम शोध कार्य के लिए डॉ. वी.डी. कश्यप स्वर्ण पदक से सम्मानित।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सस्य विज्ञान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत्त हैं। पिछले 24 वर्षों से मुख्य रूप से धान-गेहूं फसल चक्र, फसल प्रणाली व कृषि प्रणाली के उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्य में संलग्न हैं। साथ ही देश एवं विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 150 से अधिक शोध पत्रों/लेखों और 6 पुस्तकों/बुलेटिन के लेखन में योगदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट' में श्रेष्ठ शोध पत्र प्रस्तुति हेतू सम्मानित।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए 14 नवम्बर 1986 को राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के चरण कमलों में पहुंचे और दीक्षा ग्रहण की। सतगुरू की आज्ञा से 1 फरवरी 1998 से आध्यात्मिक कार्य के मिशन में संलग्न हैं। अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया और 18 आध्यात्मिक पुस्तकों की रचना की।

क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र (हरियाणा)

क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग–अलग हैं?

सर्वाधिकार सुरक्षित
जून 2007

डा० हरिओम
वरिष्ठ वैज्ञानिक

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)

विषय - वस्तु

क्रम सं.	विषय	पष्ठ सं.
1.	आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य	1
2.	धर्म, अध्यात्म और जीवन का रिश्ता	5
3.	जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न	39
4.	पुस्तक सूची	40

राधास्वामी।

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।

राधास्वामी।

समर्पित

राधास्वामी दयाल परम् संत

सतगुरू ताराचन्द जी महाराज

के चरण कमलों में।

आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज की प्रेरणा से हमने संकल्प लिया है कि आध्यात्मिक कार्यों के लिए किसी से भी पैसों की सेवा नहीं ली जाएगी और किसी आश्रम की स्थापना नहीं की जाएगी क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि कोई आध्यात्मिक सूर्य उदय होना चाहता है तो वह इतना सक्षम है कि वह अपना रास्ता स्वयं ही बनाएगा, यह उसकी आवश्यकता है और मजबूरी भी। यदि वह स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए किसी धन और आश्रमों का मोहताज है तो मुझे ऐसा अध्यात्म स्वीकार नहीं है।

व्यक्ति का धन दीनहीन की सेवा के लिए हो, गुरू की विलासिता के लिए नहीं। आज के अध्यात्म का मार्ग यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह गुरूओं के आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है। सर्वभूतों, दीन-दुःखियों और अपने चारों तरफ के वातावरण में ही सतगुरू के दर्शन हों। मनुष्य का हृदय ही आश्रम हो जो हर जीव-अजीव को शांति दे और उसके लिए सुख और परोपकार की कामना करे। व्यक्ति का घर ही आश्रम हो जहां पर माता-पिता और आगन्तुक परमात्मा तुल्य हों। शान्ति, विकास और सुरक्षा का आधार कम्यून, संघ या कोई गठजोड़ नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति हो जो समाज व वातावरण की जरूरत को समझे। व्यक्ति के विकास से समाज और देश के विकास का मार्ग स्वयं ही निर्मित होगा। यही आध्यात्मिक साम्यवाद है जो व्यक्ति एवं घर से आरम्भ होता है और विश्वमानव या महामानव के निर्माण पर इसकी पूर्ति होती है।

अध्यात्म का कार्य करने के लिए और उसमें जीने के लिए हमें किसी मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे की आवश्यकता नहीं है। इस कार्य के लिए केवल एक ही इन्फरा-स्ट्रक्चर या व्यवस्था चाहिए और वह है मनुष्य रूपी शिवालय, मनुष्य रूपी देवालय। मिट्टी के एक तत्व से बने तीर्थ स्थान, मूर्ति या शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं हैं बल्कि परमात्मा के जीवन से भरपूर पंचतत्व से निर्मित मनुष्य का शरीर चाहिए जिसके अन्दर स्वयं सष्टि का स्वामी निवास करता है। मनुष्य के मन और हृदय में सारे देवी-देवता, सारे तीर्थ व शास्त्र समाए रहते हैं और यहीं से इन सभी की पैदायश है।

बुल्लेशाह कहते हैं-

मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे, ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।
पर दिल किसी दा न ढ़ाहवी रब दिलां विच रहंदा ए।।

मेरा ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अर्थात् विज्ञानमय या आनन्दमय पुरूष की एक किरण भी संचित हो जाती है तो वहां पर हर तरह की बरकत स्वतः ही बहने लगती है। वह धरती सबको अपनी तरफ खींचने लगती है। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक व आर्थिक चेतना का विकास होने लगता है। किसी समाज में यदि एक भी व्यक्ति ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह समाज ही नहीं बल्कि देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है। ऐसे समाज या देश को हानि पहुंचाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। उत्थल-पुत्थल अवश्य आती हैं लेकिन हर उत्थल-पुत्थल जीवन की नई-२ सम्भावनाओं व चुनौतियों को जन्म देती है। कर्मयोगी समाज के लिए यही सम्भावनाएं और चुनौतियां वरदान बनती हैं और सुनहरे भविष्य का निर्माण करती हैं।

मनुष्य के लिए शारीरिक या मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं लेकिन आत्मा या रूह का केवल एक ही धर्म हो सकता है और वह है प्रेम। सच्चा प्रेम मनुष्य को जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम अनहद है जो हर हद को पार करने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम की कोई जात नहीं है, प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय का मोहताज नहीं है। वह यह नहीं पूछता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, ब्राह्मण है या शुद्र। वह तो केवल देना जानता है, लेना उसकी फितरत ही नहीं है। अतः इस भौतिक संसार में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल है। इस मार्ग में किसी अवतार, पैगम्बर या मसीहा की बाहरी पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन इनके आदर्शों का अनुसरण करके हमें इन्हें अपने ही अन्दर जीवित करना होगा। इनकी दैविक चेतना का अनुभव हमें अपनी ही आत्मा के अन्दर करना होगा तभी विश्व गांव का सपना साकार हो सकेगा और धरती पर स्वर्ग बनाने की इच्छा की प्राप्ति हो सकेगी। वरना धर्म और समाज की ये दीवारें मनुष्य को हमेशा आपस में बांटती ही रहेंगी।

प्रेम सार्वभौमिक धर्म है, जिसे मनुष्य के साथ-२ पशु और पौधा भी

मानता है। जीव-अजीव की यह सारी सष्टि इसी प्रेम के खिंचाव की शक्ति के कारण ही भिन्न-२ अस्तित्वों में बंटी हुई है और हर एक अस्तित्व अपनी पूर्ति के लिए दूसरे अस्तित्व के चारों ओर चक्कर काट रहा है। पौधा, पशु, पक्षी, जीव-अजीव हमारे किसी धर्म या शास्त्र को नहीं जानते, वे तो बस प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। अतः प्रेम का धर्म (धर्मे-सीना) ही व्यावहारिक धर्म है जो मनुष्य को शाश्वत धर्म या धर्मे-हकीकत से वाकिफ करवाता है। इसलिए मानव कल्याण के इस यज्ञ में हमें किसी धन या द्रव्य की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रेम व पवित्र विचार की आहुति चाहिए और उसी के प्रति संकल्प की आवश्यकता है।

माता-पिता और परिवार से मिली आध्यात्मिक पष्ठभूमि ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आध्यात्मिक मिशन का यह कार्य मेरी पत्नी और आध्यात्मिक सहयोगी श्रीमती बिमल की प्रेरणा से आरम्भ हुआ। मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज ने इस प्रेरणादायक चिंगारी को अपनी तवज्जह और दया के हाथ से ध्यान-भजन की हवा देकर ब्रह्म अग्नि में परिवर्तित किया जो हर समय योगयज्ञ की ज्योति (नूर) बनकर अन्दर जलती रहती है और अनहद नाद बनकर खुदाई कलमा (वर्ड) सुनाती रहती है। सम्भवतः इसी आध्यात्मिक चिंगारी को आंखों में देखकर मेरे सतगुरू शहनशाह ने मेरा नामकरण किया और मुझे 'प्रकाश' के नाम से पुकारने लगे। तब से वे हम दोनों को बिमलप्रकाश कहकर पुकारते थे। आज सत्संग का यह कार्य सतगुरू-मुर्शिद की दया और मेहर से ही आगे बढ़ रहा है और इसमें बिमल का विशेष योगदान है। आध्यात्मिक दष्टि से देखा जाए तो बिमल का ध्यान हमेशा ही सारी संगत में अव्वल रहा जिसकी चर्चा मेरे सतगुरू समय-समय पर संगत के बीच में करते रहते थे।

यह मैं उन लोगों के लिए लिख रहा हूं जो स्त्री को तुच्छ व भोग की वस्तु समझते हैं और कहते हैं कि औरत आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकती है। मेरे सतगुरू कहते थे कि परमात्मा ने दो ही जातियां बनाई हैं, एक स्त्री व दूसरी पुरूष। यही दो जातियां पुरूष और प्रकति बनकर सष्टि का सजन करती हैं। जब स्त्री और पुरूष स्वयं का आधा अस्तित्व

एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं तो ये अर्धनारीश्वर बनकर एक दूसरे का अंग-प्रत्यंग होकर कार्य करते हैं और एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। प्रकति जब अपना पूर्ण समर्पण कर देती है तो यह परामाया या पराप्रकति या राधा बनकर पुरूष (स्वामी) के अन्दर समा जाती है और पुरूष पराप्रकति या पराशक्ति बनकर अपने परम् शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है जहां पर लिंग-भेद, जाति-पाति और धर्म-सम्प्रदाय सभी गुण व आकार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मरूप या सतगुरू रूप का अनुभव जो भी व्यक्ति करता है वही ब्राह्मण कहलाता है। कुण्डलीनी शक्ति के सुदर्शन चक्र और आध्यात्मिक सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन स्वयं के अन्दर करता है वही सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाता है। ऐसे आत्मिक स्रोत के आगे सारी भौतिक सत्ता की ऐश्वर्यता नतमस्तक हो जाती है और ऐसे स्रोत का मार्ग यदि किसी सांसारिक विलासिता का मोहताज है तो यह एक विडम्बना है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे यह सब प्राप्त हो गया है बल्कि इस आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति मैं प्रयासरत हूं ताकि पूरी मानवता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी बन सके। अतः इस प्रयास रूपी यज्ञ में मैं आप सब को प्रेम और पवित्र विचार की आहुति देने के लिए आमन्त्रित करता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह आध्यात्मिक लक्ष्य अवश्य ही फलित होगा और पथ्वी पर रहने वाले मानस का अतिमानसीकरण होगा।

प्रस्तुत संकलन इसी आध्यात्मिक मिशन की जागति व पूर्ति के लिए किया गया है। हमें आशा है कि यह संकलन एक क्रियात्मक, रचनात्मक और दिव्यात्मक अध्यात्म को पाठकों के हृदय में प्रज्जवलित करेगा और आत्मिक धर्म तथा सच्चे अध्यात्म की खोज करने में सहायता करेगा।

राधास्वामी।

बिमलप्रकाश

धर्म, अध्यात्म और जीवन का रिश्ता

सृष्टि का सारा पसारा एक ही ऊर्जा का प्रकटीकरण है। कहीं वह ऊर्जा अचेतन बनकर तो कहीं चेतन और कहीं महाचेतन बनकर विराजमान है। उसी एक ऊर्जा का भिन्न-2 रूपों में रूपान्तरण है। आत्मा, मन और शरीर या धर्म, विज्ञान और संसार उसी एक महाचेतन सत्ता का अलग-2 स्तर पर अलग-2 रूप में प्रकटीकरण है। अलग-2 स्तर पर उसी ऊर्जा के अलग-2 कार्य हैं। एक स्तर पर वही ऊर्जा स्वयं का विरोध करती है तो दूसरे स्तर पर सहायक बनकर उसी विरोधी ऊर्जा की रक्षा करती है। जब यह शक्ति बनकर सहायता करती हुई प्रतीत होती है तो हम इसे परमात्मा, खुदा या गौड़ कहने लगते हैं और जब यह हमारी इच्छा के विपरीत कार्य करती है तो हम इसे ही शैतान, माया और काल कहते हैं लेकिन अपने वास्तविक व गहरे रूप में न तो यह भगवान है और न ही शैतान है बल्कि इस सृष्टि की जन्मदाता है जिसे कोई भी नाम देना बेमानी है। किसी भी गुण व धर्म में बांधना उसकी तोहीन है। सभी हदों में रहती है लेकिन सभी हदों के पार उसका आशियाना है। सभी नाम और सभी रूप उसी के हैं लेकिन किसी भी नाम और रूप में उसे बांधना उसकी ताकत को सीमित करना है।

व्यक्ति के अन्दर का सत्य आत्मा है और ब्रह्माण्ड के अन्दर का गहनतम सत्य परमात्मा है। व्यक्ति के अन्दर का सत्य यदि आत्मा है तो क्या शरीर, मन व बुद्धि आत्मा से भिन्न हैं? इसी प्रकार ब्रह्माण्ड की गहनतम आत्मा यदि परमात्मा है तो क्या धर्म, सारा ज्ञान-विज्ञान और

भौतिक संसार परमात्मा से भिन्न हैं? फिर अध्यात्म क्या है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो हमेशा से मनुष्य के मन को उद्वेलित करते रहे हैं।

अध्यात्म परमात्मा की स्वीकृति होने के साथ आरम्भ होता है। कोई व्यक्ति यदि आत्मा-परमात्मा को नहीं मानता तो उसे नास्तिक कहा जाता है अर्थात् वह सृष्टि के किसी स्वामित्व को नकार रहा है। ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुओं व सारे सिस्टम के आपसी रिश्ते को नकार रहा है। यदि सब चीजों का एक दूसरे के साथ कोई रिश्ता है तो हमें यह भी मानना होगा कि इन सब चीजों को जोड़ने वाली कोई सत्ता है, कोई ऊर्जा है जो सबको नियमबद्ध तरीके से संभालती है अर्थात् एक नियम के तहत सबकी स्थिति करती है, पोषण करती है और समय आने पर उनका प्रलय या डिजोलूशन भी करती है। इस नियम को यदि कोई मानता है तो उसे उस केन्द्रीय ऊर्जा को भी मानना होगा जो इस नियम की नियंता अर्थात् इस नियम को संचालित करती है और यदि व्यक्ति ब्रह्माण्ड की किसी केन्द्रीय ऊर्जा को मानता है तो वह नास्तिक कैसे हो सकता है? यह केन्द्रीय ऊर्जा ही व्यक्ति के अन्दर की आत्मा है और ब्रह्माण्ड के अन्दर व्यापक सत्ता के रूप में विराजमान परमात्मा, खुदा या गौड़ है।

प्रश्न उठता है क्या सृष्टि की सारी वस्तुओं का कोई आपसी रिश्ता या जोड़ है? ऊर्जा का यह रिश्ता हमें दिखाई नहीं देता है लेकिन विज्ञान भी इस बात को मानता है कि यहां सब चीजें एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं और एक-दूसरे को अपनी तरफ खींच रही हैं। हमारी पृथ्वी पूरे सौर मण्डल से जुड़ी हुई सूर्य का चक्कर काटने के लिए मजबूर है तो यह सूर्य किसी दूसरे सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। इसी प्रकार सारी आकाशगंगाए ब्रह्माण्ड के केन्द्र में विराजमान आकाशगंगा का लाखों मील प्रति सैकिण्ड

की गति से चक्कर लगा रही हैं। स्पष्ट है कि सारे ब्रह्माण्ड की ऊर्जा आपस में इतनी नजदीकी से गुंथी हुई है कि इतनी गति से घूमने के बाद भी वह छिटककर बिखरती नहीं है बल्कि इस कार्य को पूरा करने में इसके सारे घटक एक-दूसरे की सहायता करते हैं। विज्ञान कहता है कि जब सृष्टि की सारी उपलब्ध ऊर्जा समाप्त हो जाती है तो सारी सृष्टि इस केन्द्रीय आकाशगंगा में जाकर समा जाती है और फिर वहीं से नई सृष्टि की उत्पत्ति का बीज फूटता है। कितना गहरा रिश्ता है अनन्त आकाशगंगाओं का जो अनन्त दूरी पर होती हुई भी इतनी घनिष्टता के साथ एक-दूसरे के साथ हाथ में हाथ डालकर साथ-2 चल रही हैं।

अत: सारे ब्रह्माण्ड की वस्तुओं और प्रणालियों (Systems) का आपस में गहरा रिश्ता है और एक केन्द्रीय ऊर्जा भी है जो सारे ब्रह्माण्ड का नियम से संचालन करती है। इस केन्द्रीय ऊर्जा या केन्द्रीय सत्ता के अस्तित्व को जो भी स्वीकार करता है वही आस्तिक व्यक्ति है, आध्यात्मिक है। कुदरत के इस प्रबंध में यदि कोई व्यक्ति इस तथ्य को नकारता है तो वह विज्ञान और स्वयं के अस्तित्व को नकार रहा है। इस व्यवस्था को स्वीकार किए बगैर किसी भी व्यक्ति या वस्तु का अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि केन्द्रीय ऊर्जा की इस व्यवस्था में क्या उस ईश्वर की सम्भावना हो सकती है जिसे हम मानते हैं? जो सब कुछ जानता है और सारी सृष्टि उसके इशारे पर चलती है? जानना और समझना अस्तित्व की दरमियानी अवस्था है, बीच की अवस्था है। ऊर्जा की उत्तम अवस्था नहीं है। मुख्य तौर पर ऊर्जा की तीन अवस्थाएं हैं, अचेतन, चेतन, और महाचेतन। अचेतन अवस्था में ऊर्जा पदार्थ के अन्दर बेहोशी के साथ

पड़ी है लेकिन फिर भी उस स्तर के नियम के अनुसार वह पूर्णता से यांत्रिक ऊर्जा (मैकेनिकल रूप) बनकर कार्य कर रही है। यहां वह गति भी करती है और अपनी आवश्यकतानुसार चुनाव भी करती है और बिना जरूरत की ऊर्जा को दूर भी धकेलती है। इसी यांत्रिक ऊर्जा के नियम के आधार पर शरीर बढ़वार करता है, बीज अंकुरित होता है और पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है। यहां पर प्रकृति अचेतन होकर पुरूष की आज्ञा का पालन करती है। सारा भौतिक संसार इसी स्तर की ऊर्जा की अभिव्यक्ति है। दूसरे स्तर पर यह ऊर्जा चेतन ऊर्जा बनकर कार्य करती है। मन व बुद्धि के जरिए पुरूष का कार्य सम्पन्न होता है। सारा मानसिक संसार, दैविक संसार इसकी परिधि में आ जाता है। यह वासनाओं का संसार है, स्वप्न का संसार है, छल व धोखे का संसार है। सारे इन्द्रजाल, सारे धर्म और हमारे ईश्वर इसी संसार की देन हैं। यहीं से सारा ज्ञान, सारी भविष्यवाणियां पैदा होती हैं। यह इतना बड़ा संसार है कि जिसकी कोई सीमा नहीं है। हम जो कुछ भी देखना चाहते हैं वही हमारे सपनों या ध्यान में प्रकट हो जाता है। यदि हम सतोगुणी या तमोगुणी व्यक्ति हैं तो सतोगुणी या तमोगुणी फरिश्ते व भगवान हमारे सामने प्रकट हो जाते हैं। यदि हम रजोगुणी स्वभाव के हैं और संसार को जीतना चाहते हैं तो रजोगुणी ताकतें हमारी सहायता के लिए प्रकट होने लगती हैं। यदि हम ईश्वर को पराक्रमी रूप में देखना चाहते हैं जो हाथ में हथियार लेकर आए और हमारी मदद करे तो इस स्तर की शक्ति उसी रूप में प्रकट होकर हमारा हौंसला बढ़ाती है। कहते हैं कि ऐसी ही कोई ताकत हिटलर के अन्दर पैदा हो गई थी, जिसने उसका दिशा-निर्देशन किया। जिस चीज के लिए हमारा जुनून, हमारी रूचि होती है उसी रूप में आकर ईश्वर हमारी मदद करता है। सारे शास्त्र, सारे देवता, अवतार,

पैगम्बर इस स्तर की ऊर्जा की देन हैं। सुकरात के शिष्य प्लेटो इसे सूक्ष्म रूप व विचारों (Forms and Ideals) का संसार मानते थे। यही सूक्ष्म रूप व विचार संसार में स्थूल रूप में उतरकर सृष्टि की रचना करते हैं। उनका यह मानना था कि संसार के जितने भी स्थूल रूप या विचार हैं वे सभी आत्मा के संसार में सूक्ष्म रूप से मौजूद रहते हैं। ईस्लाम में इस मानसिक संसार को आलम-अल-मिथाल कहा गया है। संसार का सारा ज्ञान-विज्ञान, सारे धर्म और दर्शन इसी स्तर की ऊर्जा की अभिव्यक्ति हैं।

ऊर्जा के तीसरे स्तर पर महाचेतन व पराचेतन ऊर्जा है। इस स्तर पर ऊर्जा उदासीन या न्यूटरल रहती है। खिचांव (Attraction) व दुराव (Repulsion) दोनों से उदास रहती है। मनुष्य के अन्दर जब साक्षी भाव आ जाता है तो वह हर उतार-चढ़ाव से उदासीन होने लगता है। सृष्टि के हर कण के केन्द्र में यह ऊर्जा विराजमान है। एक छोटे से छोटे परमाणु के अन्दर न्यूट्रान के स्तर पर मौजूद है और विशालकाय आकाशगंगा के अन्दर ब्लैक होल बन कर पूरी आकाशगंगा को अपने चारों और घूमा रही है। ब्रह्माण्ड की केन्द्रीय आकाशगंगा के अन्दर यह सबसे बड़े ब्लैक होल के रूप में मौजूद है और अपने चारों ओर की अरबों-खरबों आकाशगंगाओं के गले में ऊर्जा की ताकत की रस्सी डालकर उनका नियंत्रण करती है। विज्ञान कहता है कि केन्द्रीय आकाशगंगा का यह ब्लैक होल समय के साथ बड़ा होता जा रहा है और अपने चारों ओर के बूढ़े सितारे और यहां तक कि सबसे पहले बनी और पुरानी आकाशगंगाओं को खाता जा रहा है। मेरा अनुमान कहता है कि एक समय पर यह ब्लैक होल सारी सृष्टि को अपने अन्दर समेट लेगा और उसे ऊर्जा की तरंगों में तबदील कर देगा। जब सारा ब्रह्माण्ड अपने केन्द्र में जाकर समा जाएगा तो ब्रह्माण्ड की अनुपलब्ध ऊर्जा

उपलब्ध ऊर्जा में तबदील हो जाएगी और सृष्टि का कार्य पुनः आरम्भ हो जाएगा। यह सारा कार्य कदम-दर-कदम धीरे-2 चलता है और शांतिपूर्ण तरीके से चलता है। इस सिद्धांत के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति के लिए किसी बिग-बैंग सिद्धांत की आवश्यकता नहीं है। यह केन्द्रीय ऊर्जा सृष्टि के हर कण व अस्तित्व के केन्द्र में विराजमान आध्यात्मिक ऊर्जा है जो अपने समय पर हर अस्तित्व को अपने अन्दर समेट लेती है और समय आने पर उसे प्रकट कर देती है। मनुष्य के अन्दर यह ऊर्जा सुषुप्ति (गहरी निद्रा) के रूप में मौजूद है। व्यक्ति जब कार्य करता-2 थक जाता है तो उस थकी हुई ऊर्जा के नवीनीकरण के लिए उसे सुषुप्ति के अंधकार में जाना ही पड़ता है। सुषुप्ति में जाने के बाद जब वह ऊर्जा नई हो जाती है तो व्यक्ति समय आने पर स्वयं ही जाग जाता है और नई ताजगी के साथ कार्य करने लगता है। जब व्यक्ति मृत्यु के निकट होता है तो सुषुप्ति की यह ऊर्जा ब्लैक होल की तरह अपनी सीमा का विस्तार करने लगती है और शरीर की इन्द्रियां और मन इसके अन्दर निर्विचार बनकर समाने लगते हैं और मृत्यु अर्थात् शरीर की प्रलय आ जाती है। शरीर की सारी ऊर्जा छिटक कर बिखर जाती है। चेतना, चेतना के संसार में चली जाती है और शरीर के दूसरे अवयव या धर्म अपने-2 विश्व रूप में जाकर विलीन हो जाते हैं और नए सिरे से नई रचना के कार्य में अपना योगदान आरम्भ कर देते हैं। यहां शरीर का गहरी निद्रा में जाना और बार-2 जागृति में लौट आना और शरीर का जन्म व शरीर की मृत्यु सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का भेद खोलते हैं।

इस स्तर की ऊर्जा केन्द्रीय ऊर्जा होते हुए उदासीन है लेकिन अपने आप में यह इतनी घनीभूत (Dense) है कि इसकी केवल उपस्थिति ही इसके चारों ओर हलचल पैदा करती रहती है। बड़े-2 सिस्टम अपने आप

ही बनते और टूटते रहते हैं लेकिन फिर भी इसके अन्दर उनका प्रभाव नहीं होता है। यह काफी हद तक स्थिरता में रहती है, महाशांति में रहती है, यही आनन्द का स्रोत है जहां से सारी सृष्टि को जीवन मिलता है और उसका पोषण होता है तथा समय आने पर जरूरत के अनुसार उसका विलय भी कर देती है। सारी सृष्टि का आधार यही ऊर्जा है जो समाधि में महाचेतन होकर प्रकट होती है और बड़ी-2 क्रांति पैदा करती है। इस ऊर्जा से घनीभूत व्यक्ति बदलाव के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करता लेकिन उसके चारों ओर स्वयं ही बड़े-2 बदलाव होने लगते हैं।

सुषुप्ति आनन्द का स्रोत है लेकिन यहां कोई विचार नहीं है। यदि यहां लेशमात्र भी कोई विचार होता तो सुषुप्ति का आनन्द न होता। विचार मानसिक संसार की पैदायश है, स्वप्न तक विचार की पहुंच है उससे आगे नहीं। इसलिए विचार, आकार और रूप का सारा संसार सुषुप्ति में जाते ही दम तोड़ देता है, उसमें विलीन हो जाता है। जानना और समझना सब बेकार हो जाता है। यहां पर कोई अवतार, शास्त्र या पवित्र तीर्थ अपनी दस्तक नहीं दे सकता है जिस प्रकार गहरी निद्रा में किसी स्वप्न के लिए कोई स्थान नहीं है। ऊर्जा का यही स्थल धर्म की आत्मा है, परमात्मा का धाम है। वस्तुतः इसे हम धर्म या परमात्मा भी नहीं कह सकते हैं। इसे किसी गुण या आकार में बांधना भी इसका अपमान है। यह तो बस है, एक आनन्द है जिसका उसी समय वर्णन करना भी संभव नहीं है। इसे कोई नाम तो दिया ही नहीं जा सकता है। ध्यान में ऊर्जा की यह अवस्था निर्विकल्प या असम्प्रज्ञात समाधि में जाकर प्रकट होती है जहां यह ऊर्जा इतनी घनी हो जाती है कि इसका प्रकाश भी अंधकार की तरंगों में बदल जाता है। ईसाई धर्म ने इसे आत्मा की काली रात्रि अर्थात् डार्क नाईट ऑफ सोल

कहा है। श्री अरविन्द कहते हैं कि यहां महाचेतन प्रकाश (Superconscient Light) इतना गाढ़ा हो जाता है कि यह दिखाई नहीं देता। जैन धर्म ने इसे परमज्योति का लब्धि लक्षण कहा है। बौद्ध धर्म में इस अवस्था को आलयविज्ञान (House Consciousness) कहा गया है जहां पर सृष्टि के सारे बीज सूक्ष्म रूप में मौजूद रहते हैं। आदि शंकराचार्य अनुभव की इस अवस्था को तुरियातीत कहते हैं। विज्ञान कहता है कि इस अवस्था में शरीर में अल्फा तरंगों का प्रभाव बढ़ जाता है। मन की हलचल थम जाती है। शांति अनुभव होने लगती है। राधास्वामी योग पराचेतना के इस अनुभव को और भी एक कदम आगे तक खोलता है जिसका वर्णन सम्यक समाधि पुस्तक में किया गया है।

धर्म क्या है? स्पष्ट है कि धर्म की प्राप्ति तब होती है जब व्यक्ति सारी हदों को पार कर जाता है। सुषुप्ति की चेतना के अन्दर जाकर धर्म की प्राप्ति होती है जहां न कोई रूप है, न आकार है और न ही विचार है। यही है आत्मिक धर्म की व्याख्या। संसार के सभी धर्म, धर्म नहीं सम्प्रदाय हैं। जो धर्म मनुष्य को मनुष्य से लड़वाता है वह धर्म नहीं हो सकता। संसार के सारे धर्म मानसिक संसार की देन हैं, परमात्मा या खुदा से इनका कोई सरोकार नहीं है। परमात्मा की चेतना में तब तक नहीं जाया जा सकता जब तक हम इस सपनों के संसार में व्यवहार कर रहे है। हमारे शास्त्र, मंदिर या मस्जिद केवल मील का पत्थर बनकर, एक सीढ़ी बनकर हमारी मदद कर सकते हैं, ये मंजिल नहीं बन सकते हैं। हम इनका सम्मान कर सकते हैं लेकिन आत्मिक धर्म को लहुलुहान करके नहीं। मानसिक और सांसारिक धर्म की इज्जत तब तक कर सकते हैं जब तक आत्मिक धर्म को कोई हानि नहीं पहुंचती।

धर्म यदि आत्मा है तो विज्ञान मन व बुद्धि है और संसार इन दोनों की कर्मभूमि है। धर्म, विज्ञान और संसार इसी तरह हैं जैसे आत्मा, मन और शरीर। आत्मा, मन और शरीर तीनों में यदि तालमेल नहीं है तो तीनों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। आत्मा की पवित्रता व ताकत मन और शरीर को विश्वास से भरते हैं तो मन दैविक कल्पनाओं और ऊंचे विचारों से आत्मा और शरीर में जान डालता है, आगे बढ़ने के लिए सतत प्रयास में मदद करता है। यदि शरीर मजबूत नहीं है तो सारा कर्म तथा मानसिक व आत्मिक विकास अवरूद्ध हो जाता है, मन में क्लेश और असंतोष पनपने लगता है जिससे आत्मा की शक्ति भी नष्ट होती है। यदि शरीर को लगातार भूखा रखा जाए तो मन की शक्ति क्षीण हो जाती है और फिर आत्मा भी शरीर का साथ छोड़कर चली जाती है। आत्मा ज्योति है तो शरीर दीपक है। यदि आत्मा को पाने के लिए शरीर को कष्ट देकर सुखाते हैं तो बिना दीपक के ज्योति भी कब तक जल सकती है और यदि शरीर की सुख-सुविधा के लिए आत्मा की बलि चढ़ाते है तो बिना ज्योति के दीपक की भी कोई कीमत नहीं रहती है। मन बीच की अवस्था है जो तेल बनकर शरीर रूपी दीपक में जलता है। अत: तीनों अलग-2 होते हुए भी एक ही ऊर्जा के भिन्न-2 रूप हैं। तीनों का स्वभाव भिन्न-2 होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए तीनों में सतुंलन बना रहना अति आवश्यक है।

इसी प्रकार धर्म, विज्ञान और संसार एक ही सत्ता के तीन चेहरे हैं; एक बाहरी, दूसरा दरम्यानी तो तीसरा इन दोनों की आत्मा है। संसार शरीर है जहां पर वासना और भावनाओं का निवास है, विज्ञान मन है जहां ज्ञान को व्याख्या मिलती है और संसार रूपी शरीर में जिसका उपयोग होता है तथा धर्म आत्मा है जो मन (विज्ञान) और शरीर (संसार) को ताकत प्रदान करता है। धर्म, विज्ञान और संसार एक-दूसरे के साथ अभिन्न रूप से जुड़े

हुए हैं। धर्म (चेतना) के बिना विज्ञान (विचार) नहीं और विज्ञान के बिना संसार (कर्म) की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। एक का अधूरापन दूसरे को अवश्य ही प्रभावित करता है। यदि संसार का आचार-व्यवहार ठीक नहीं है तो विज्ञान का दुरूपयोग होगा जिससे धर्म या आत्मिक मूल्यों की हानि होगी। इसी प्रकार धर्म की विकृति आतंकवाद जैसी समस्या को जन्म देगी। इसलिए तीनों के अन्दर पवित्रता, शुद्धता और आत्मिक संबंध की आवश्कता है क्योंकि तीनों एक ही पेड़ के तीन अंग हैं। एक शाखा है, दूसरा पत्ते और तीसरा फूल है। किसी भी एक की विकृति या कमजोरी दूसरे दोनों अंगों के लिए हानिकारक है और अन्तत: बीज प्रभावित होगा और पौधे की आने वाली संतति को इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा।

अध्यात्म क्या है? अध्यात्म परमात्मा की खोज करने का मार्ग बताता है जो परमात्मा के अस्तित्व की स्वीकृति से आरम्भ होता है। परमात्मा क्या है? परमात्मा की शक्ति तीन स्तर पर व्याप्त है। सामान्य चेतन, विशेष चेतन और महाचेतन। परमात्मा का शुद्ध तत्व अस्तित्व की तीसरी तह में छिपा हुआ है। परमात्मा की बाहरी स्तर की ऊर्जा के साथ हमारा संबंध है। जिस प्रकार सूर्य के साथ हम सीधा व्यवहार नहीं कर सकते हैं बल्कि उसकी किरणों से हमारा कार्य चलता है। सारा संसार सूर्य की किरणों का ही रूपान्तरित रूप है। हम सभी परमात्मा के सामान्य चेतन के साथ व्यवहार करते हैं। सामान्य चेतन के स्तर पर परमात्मा की शक्ति एक यंत्र अर्थात् मशीन की तरह व्यवहार करती है उसमें चेतना का अंश अर्थात् परमात्मा की शुद्ध ताकत का अंश बहुत ही कम है। केवल इतना अंश है कि मन और माया या शैतान का यह संसार जीवित रह सके। इसका अस्तित्व बना रहे। सारा भौतिक संसार इसी सामान्य चेतन का पसारा है।

सामान्य स्तर पर रहते हुए हम जो भी करते हैं वह विशेष चेतन को स्वीकार्य नहीं होता है। दोनों का स्वभाव एक दम विपरीत है जिस तरह से एक परमाणु के अन्दर इलैक्ट्रान और प्रोटान का होता है। इलैक्ट्रान प्रोटान का विरोधी गुण होता है लेकिन इलैक्ट्रान का आधार भी प्रोटान होता है। इसी प्रकार सामान्य चेतन का आधार भी विशेष चेतन होता है।

विशेष चेतना में वास करने वाला मन शरीर की सारी गति और कार्यों को नियंत्रित करता है; शरीर भोग की तरफ भागता है लेकिन मन उसकी दौड़ पर अंकुश लगाता है। शरीर की ऊर्जा यंत्र की तरह कार्य करती है जबकि मन चेतन होने के कारण अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करता है। जब मन शरीर व इन्द्रियों की वासनाओं के रस में लीन हो जाता है और अपने विवेक का प्रयोग नहीं करता, अच्छे-बुरे का कोई भाव नहीं रखता तो यह भी सामान्य चेतना के स्तर पर व्यवहार करता है। सारा विराट जगत इसी सामान्य चेतन की अभिव्यक्ति है जिसमें चेतना की मौजूदगी न्यूनतम है। इस स्तर पर रहने वाला व्यक्ति बुद्धि विवेक का प्रयोग नहीं करता। बाहरी संसार, दूसरा व्यक्ति, शास्त्र या संसार के धर्म व्यक्ति का मार्गदर्शन करते हैं। यदि धर्म या धर्मशास्त्र यह कहता है कि परमात्मा की भक्ति या इच्छा की पूर्ति दूसरे जीव की बलि चढ़ाने से होती है तो वह बलि चढ़ा देता है। कोई धर्म, पुरोहित या धर्मशास्त्र यदि ऐसा कहता है कि शैतान को पत्थर मारने से खुदा खुश होता है तो वह खुशी-2 पत्थर मारने लग जाता है। वह तनिक भी विचार नहीं करता कि बलि देना जीव हत्या है, शैतान को पत्थर मारना स्वयं शैतान का कार्य है। जो भी धर्म परमात्मा को स्वयं से बाहर ढूंढते हैं, चाहे वह साधन पवित्रतम ग्रंथ हो, पवित्र पूजा स्थल हो, तीर्थ, व्रत, हवन-यज्ञ, पूजा-पाठ या कथा श्रवण हो वे सभी परमात्मा

की बाहरी स्तर की ऊर्जा का प्रयोग करते हैं। परिधि की ऊर्जा में वास करते हैं। संसार की हर वस्तु को वस्तु के रूप में देखते हैं चेतना के रूप में नहीं। उनके लिए संसार की हर वस्तु भोग के लिए है उपयोग के लिए नहीं। भक्षण के लिए है, संरक्षण के लिए नहीं। आज के अधिकतर धार्मिक व्यक्ति ब्रह्म या खुदा की इसी स्तर की ऊर्जा का यंत्र हैं।

विशेष चेतन में व्यवहार करने वाला व्यक्ति अन्तर्मुखी हो जाता है। जैन धर्म में इसे प्रतिसल्लीनता कहा जाता है। वह इन्द्रियों के स्तर पर ठहरकर व्यवहार नहीं करता है बल्कि उनसे अलग रहकर उनसे काम लेता है। व्यक्ति के शरीर के अन्दर वह शक्ति चेतनायुक्त या विवेकयुक्त मन है। इसी प्रकार अस्तित्व के स्तर पर वह शक्ति ब्रह्म है जो काल और मायायुक्त पिण्डी (भौतिक) रचना के स्थूल कार्य का संचालन करती है। जिस प्रकार सामान्य चेतना के स्तर पर माया अंग मुख्य रहता है और आत्मिक अंग गौण हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म के विशेष चेतन में आत्मिक अंग मुख्य हो जाता है और माया अंग गौण अर्थात् कमजोर हो जाता है। शरीर के अन्दर मन की छोटे स्तर पर मौजूदगी है तो ब्रह्मण्ड के स्तर पर ब्रह्मण्डी मन का विस्तार असीम है, अनंत है। जब किसी मनुष्य का मन इस ब्रह्मण्डी मन अर्थात् विशेष चेतन के साथ एकरूप हो जाता है तो उसके अन्दर इतनी ताकत आ जाती है कि यह पूरे संसार को भी अपने वश में कर सकता है लेकिन यदि ब्रह्म के स्तर पर मन (ब्रह्मण्डी मन) की शक्ति अनंत है तो इसकी कमजोरियां भी अनंत हैं। विशेष चेतन में सूक्ष्म संसार के अनंत जंजाल जीवित हो जाते हैं। कल्पनाएं और सूक्ष्म संसार की वासनाएं अपने वास्तविक रूप में आकर बहुत ही विश्वसनीय भ्रम पैदा करती हैं। जब किसी व्यक्ति को अपने देवता, अवतार या गुरू के दर्शन

हो जाते हैं तो वह इसे परमात्मा मानकर कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। उसके अन्दर इतनी अधिक श्रद्धा हो जाती है कि वह इसे अपना धर्म मानकर स्वयं की कुर्बानी से भी पीछे नहीं हटता है। वह नहीं जानता है कि यह सूक्ष्म संसार भ्रम का एक जंजाल है। धार्मिक कट्टरपन और आतंकवाद इसी संसार की देन है जो आदमी को आदमी का दुश्मन बना देती है। व्यक्ति ईश्वर को अलग समझता है, खुदा को अलग और गौड़ को अलग। ब्रह्म की इस स्तर की चेतना तक परिस्थिति के अनुसार मन के अन्दर विवेक तो पैदा हो जाता है लेकिन वह विवेक अन्त: प्रेरणा और अन्तर्ज्ञान नहीं बन पाता है और व्यक्ति के भ्रमित होने की सम्भावना बहुत अधिक रहती है इसलिए किसी ऐसे गुरू की जरूरत रहती है जिसकी पहुंच महाचेतन (परमात्मा के शुद्ध चेतन तत्व) तक हो और जो अनहद नाद का भेद जानता हो।

महाचेतन या पराचेतन में पहुंचा हुआ व्यक्ति सामान्य चेतन और विशेष चेतन दोनों से ही अलग व्यवहार करता है। वह सामान्य और विशेष चेतन दोनों की बारीकियों को समझता है, उनकी विशेषताओं और कमजोरियों से वाकिफ होता है। इसलिए कैसी भी परिस्थिति आए वह अडिग बना रहता है, शांत रहता है। सारी विरोधी शक्तियां यहां आकर शांत हो जाती हैं। विरोधी स्वभाव के व्यक्ति भी ऐसे पुरूष के पास आकर संतुष्ट हो जाते हैं क्योंकि महाचेतन अस्तित्व सारे स्थूल, सूक्ष्म और कारण अस्तित्व की गहनतम आत्मा है जहां पर आकर सारे विरोधी ध्रुव आपस में विलीन हो जाते हैं। महाचेतन में पहुंचा हुआ व्यक्ति सतपुरूष का अवतार होता है। इस पृथ्वी पर रहता हुआ और सारे कर्म करता हुआ भी वह इनके प्रभाव से अछूता रहता है क्योंकि जिस स्तर की चेतना में वह वास करता है वह बाहरी और मध्यम स्तर की चेतना नहीं है जहां उतार-चढ़ाव होते रहते हैं बल्कि

सारे उतार-चढ़ाव और भौतिक व सूक्ष्म संसार के सारे हलचल महाचेतन के भण्डार में व्याप्त सुषुप्त चेतना के कारण होते हैं। जिस प्रकार सारी भौतिक सत्ता को जन्म देने वाले नाभीकिय कण इलैक्ट्रान व प्रोटान न्यूट्रान के स्तर पर जाकर उदासीन हो जाते हैं और इस शरीर के अन्दर शरीर की इन्द्रियां और उनका स्वामी मन गहरी निद्रा (सुषुप्ति) में जाकर अपने सारे संकल्प-विकल्प भूल जाते हैं तथा समुंद्र की बाहरी हलचल और ज्वारभाटे समुंद्र की गहराई में जाकर शांत हो जाते हैं। एक परमाणु के केन्द्र में जिस प्रकार न्यूट्रान बाहरी स्तर पर व्याप्त धनात्मक शक्ति (प्रोटान) और ऋणात्मक शक्ति (इलैक्ट्रान) का आधार है, इस शरीर के अन्दर सुषुप्ति की चेतना जागृति और स्वप्न का आधार है और समुंद्र की गहराई मध्य और सतह की हर हलचल का आधार है उसी प्रकार महाचेतन (सतलोक) की चेतना विशेष चेतन (ब्रह्म) और सामान्य चेतन (सारा भौतिक व स्थूल संसार) का आधार व जन्म देने वाली शक्ति है तथा व्यक्ति के अन्दर उसी प्रकार आत्मा मन और शरीर का आधार व जन्म देने वाली शक्ति है। मन और शरीर के कारण आत्मा का अस्तित्व नहीं बल्कि आत्मा के कारण मन व शरीर का अस्तित्व है। इसी तरह महाचेतन के कारण सूक्ष्म और स्थूल संसार का अस्तित्व है और परमाणु के अन्दर न्यूट्रान के कारण प्रोटान व इलैक्ट्रान का अस्तित्व है।

तीनों स्तर की ऊर्जा एक दूसरे की विरोधी हैं लेकिन फिर भी एक दूसरे की पूरक है, इसके साथ-2 अन्तरतम चेतना या ऊर्जा बाहर की चेतना की जन्मदाता है। इसलिए जो भी अन्तर्मुखी व्यक्ति होता है उसे बाहरी संसार का ज्ञान सहज ही हो जाता है। इसके विपरीत बाहरमुखी व्यक्ति जो वस्तुओं के संसार और इसके भोग (Objective Experience) को मुख्य समझता है वह आन्तरिक सुख (Subjective Experience) से खाली रह

जाता है और उसके जीवन में अन्दर और बाहर का असंतुलन पैदा हो जाता है। यही असंतुलन प्रकृति में असंतुलन पैदा करता है। सभी वस्तुओं के बीच एक आत्मिक रिश्ते की समझ न होने के कारण ऐसा व्यक्ति प्रकृति को एक भोग की वस्तु समझता है और आरम्भ हो जाता है प्रकृति का अनावश्यक दोहन और प्राकृतिक संसाधनों का शोषण और अवमूल्यन (Degradation)। व्यक्ति चेतना की बाहरी परत में स्वयं को खोता चला जाता है। आत्मिक गहराई से दूर होता चला जाता है अर्थात् ऐसा व्यक्ति या ऐसा समाज जड़हीन होने लगता है क्योंकि उसके रिश्ते की जड़ें विशेष चेतन और महाचेतन से टूटने लगती हैं। ऐसे व्यक्तियों से निर्मित समाज कमजोर पड़ने लगता है। स्वार्थ बढ़ने लगता है और आपसी प्रेम खत्म होने लगता है। सारा समाज तुच्छ स्वार्थों के लिए आपस में विभाजित होने लगता है जिसे काल की गर्म हवा का कोई भी छोटा सा झोंका बरबाद कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति जीवन में सफल होना चाहता है तो उसे अन्दर की कला व आत्मिक अनुभव का स्वाद अवश्य ही चखना चाहिए वरना अकेली बहिरमुखता उस बादल के पानी के समान है जो समुंद्र की सतह पर आकर इधर-उधर की लहरों के झकोले खाने लगता है और कोई भी हवा का झोंका न जाने कब उसे अपने साथ आकाश में उड़ा ले जाता है और अनजानी राह पर ले जाकर पटक देता है जहां से उसका अपने स्रोत या घर की तरफ लौट पाना असम्भव हो जाता है।

उपनिषद् और दूसरे शास्त्रों में परमात्मा के तीन रूपों का वर्णन किया गया है। एक प्रणव पुरूष जो प्राण बनकर सृष्टि का सृजन करता है। उसे ओ३म् कहा गया है, सावित्री-सूर्य कहा गया है और गायत्री मंत्र तथा प्राणायाम के द्वारा उसकी उपासना व सिद्धि की जाती है। वह प्रणव पुरूष

आध्यात्मिक (सूक्ष्म) सूर्य है जिसकी किरणें सृष्टि का प्राण बनकर हर प्राणी या जीव के हृदय में धड़कती हैं। श्री अरविन्द आध्यात्मिक सूर्य, जो अन्तर्मुखी होने पर दृष्टिगोचर होता है, को ही विज्ञानयम पुरूष कहते हैं अर्थात् जो समस्त ज्ञान-विज्ञान का स्रोत है। सारा सांसारिक और मानसिक ज्ञान विज्ञान बनकर इसी सूर्य से प्रकट होता है। वे इसे नोसिस (Gnosis) भी कहते हैं। इसी आध्यात्मिक सूर्य से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। यह स्थूल सूर्य जो हमें आकाश में दिखाई देता है और हमें जीवन देता है उस आध्यात्मिक सूर्य का केवल अंशमात्र है। इस स्थूल सूर्य के अन्दर यदि छोटी सी भी हलचल होती है तो उसका प्रभाव पूरी पृथ्वी पर पड़ता है। जिस दिन सूर्य के अन्दर की ऊर्जा खत्म हो जाएगी वह पल पृथ्वी के जीवन का आखरी पल होगा। विज्ञान कहता है कि पृथ्वी पर जितनी भी विनाशकारी घटनाएं या भुकम्प आते हैं उन सभी में सूर्य के अन्दर की हलचल कहीं न कहीं जिम्मेदार होती है। इसलिए इस साकार सृष्टि विशेषकर पृथ्वी के जीवन के लिए इस सूर्य से बड़ा भगवान नहीं हो सकता है। अतः उपनिषद् ने सूर्य को प्रणव पुरूष कहकर उसकी विधिवत पूजा करने का उपदेश दिया है ताकि उसके गुण हमारे अन्दर आ सकें और हम भी उतने ही तेजस्वी और संसार के लिए कल्याणकारी हो सकें। आदि शंकराचार्य (अद्वैत दर्शन के प्रणेता) ने पंचायतन (पांच देवताओं) को मानने के सिद्धांत में सूर्य को सबसे बड़ा और मुख्य देवता के रूप में स्थापित किया है।

परमात्मा के दूसरे रूप का वर्णन ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के रूप में किया गया है। यह रूप विशेष चेतन से भरपूर है। ईस्लाम में इसे खुदाई नूर (प्रकाश) कहा गया है जिससे सारी खलकत, सारी कायनात, पीर और पैगम्बरों का जन्म होता है। सारे फरिश्ते, सारे देवी-देवता इसी संसार में

भ्रमण करते हैं और सामान्य चेतन के संसार में रहने वाले जीवों की सहायता करते हैं। यह स्वप्न का संसार है इसमें सूक्ष्म ताकतें वास करती हैं जो हमारी मांग और प्रार्थना का जवाब देती हैं। हम जैसा विचार मन के अन्दर तपाते हैं, उस विचार की सहायता के लिए अच्छी या बुरी सुरतें हमारे सपने में आने लगती हैं और उस विचार को और भी ताकत मिलती चली जाती है। यदि अच्छा विचार है तो अच्छी सुरतें और यदि बुरा है तो बुरी ताकतें उस विचार को अपनी ताकत के जल से सींचने लगती हैं और वह विचार और भी मजबूत होता चला जाता है। विचार के अन्दर जितनी अधिक ताकत, कंसन्ट्रेशन और संकल्प होता है, उससे निकलने वाली कर्म की जड़ें भी उतनी ही मजबूत होती हैं और उतना ही अधिक उस कार्य का संसार में पसारा होता चला जाता है।

जब व्यक्ति के विचार और व्यवहार दिव्य हो जाते हैं तो उसके अन्दर की सारी ऊर्जा ज्योति बनकर चमकने लगती है। ध्यान की टकटकी उस बिखरी हुई शक्ति को एकाग्र करने में मदद करती है और व्यक्ति चुम्बक की तरह विशेष चेतन का ताकतवर स्रोत बनने लगता है और हर तरह की बरकत उसकी तरफ खिंचकर आने लगती है। विश्व की सारी दिव्य शक्तियां ऐसे स्रोत की तरफ अनायास ही और स्वत: ही बहने लगती हैं।

परमात्मा के तीसरे रूप का वर्णन नादब्रह्म के रूप में किया गया है। जब व्यक्ति साधना की गहराई में चला जाता है तो वह खुदा की आवाज सुनने लगता है जिसे अनहद नाद, कलमा, वर्ड, लोगोस, नादाय आसमानी, उद्गीत, आवाजे मुस्तकीन आदि नामों से पुकारा गया है। मन्दिर व चर्च में बजने वाला घंटा अन्तर में होने वाला संगीत है। अन्तर में जब आत्मा की ज्योति जलती है तो उसके साथ घंटा, शंख, बांसुरी, वीणा की आवाजें भी

बारी-2 साधक को आनन्द से भर देती हैं। हजरत मुहम्मद के अन्दर जब आयतें उतर रही थी तो उस वक्त घंटे की आवाज का वर्णन करते हैं। जब व्यक्ति चेतना के इस महाचेतन स्रोत के साथ जुड़ जाता है तो कुंए के पानी की तरह उसका संबंध अनन्त समुंद्र के अनादि स्रोत से हो जाता है। ऐसे कुंए से कितना भी पानी निकालो वह समाप्त नहीं होता है और उसकी ताजगी में भी कोई फर्क नहीं आता है। कितना भी बांटो, कितना भी लुटाओ, उस अनादि स्रोत की दया बहती ही रहती है और किसी भी मनुष्य के मरूस्थल रूपी जीवन को मरूधान बना देती है। जब व्यक्ति अस्तित्व की इस गहराई में चला जाता है तो वह आनन्द की बेहोशी में जाकर अस्तित्व की सभी हदें पार कर जाता है, यह है वास्तविक धर्म की प्राप्ति, धर्मे-हकीकत की प्राप्ति जहां जाकर व्यक्ति पूरी तरह से खुदा में फनाह हो जाता है, फनाह-फि-अल्लाह हो जाता है। वह इतनी मस्ती में जाकर समा जाता है कि उसे अल्लाह, परमात्मा या गौड़ का भी होश नहीं रहता है और इस मस्ती के आनन्द को वह कोई नाम भी नहीं दे सकता है क्योंकि वहां तो उसे कोई समझने वाला और समझाने वाला ही नहीं रहता है, वह स्वयं भी अस्तित्व की गहराई में जाकर उसी का रूप बन जाता है, अस्तित्वहीन हो जाता है। अस्तित्वहीन होकर भी वह सारी सृष्टि की जान बन जाता है। क्योंकि वह स्रोत में जाकर समा जाता है। अब वह काल, माया और शैतान की हदों से बाहर चला जाता है। इस पृथ्वी पर रहते हुए वह सतपुरूष का अवतार या पैगम्बर बनकर जीवों का कल्याण करता है और भौतिक सृष्टि के अचेतन और अवचेतन (Subconscious) संसार में व्याप्त दु:ख, अज्ञान और अंधकार को हरने में जीवों की मदद करता है। इस अनुभव में जाकर कबीर साहब कहते हैं कि यहां जाप, अजपा और अनहद तीनों ही

मर जाते हैं अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों पीछे रह जाते हैं और सुरत (आत्मा) शब्द (परमात्मा) में समा जाती है इसलिए अब वह निर्भय होकर काल और शैतान की नगरी में रमन करती है-

जाप मरे, अजपा मरे, अनहद भी मर जाए।
सुरत समानि शब्द में ताहि काल न खाए।।

श्रीमद्भगवद् गीता में परमात्मा के इन तीन रूपों को क्षर, अक्षर और पुरूषोतम अर्थात् जीव, आत्मा और परमात्मा कहकर वर्णन किया है। क्षर पुरूष इस विनाशशील और परिवर्तनशील संसार की चेतना है जो बार-2 जन्म लेती रहती है और मरती रहती है अर्थात् इस दुःखों के संसार में आवागमन में फंसी रहती है। एक जीव के अन्दर जीवात्मा इस क्षर पुरूष का प्रतिनिधि है और इस संसार में परमात्मा का अंश है जो अज्ञान के कारण परमात्मा को भूल गयी है, संसार की मोहमाया में फंसकर अपने विवेक को खो बैठी है और भौतिक संसार (सामान्य चेतन) की चेतना को ही अपना असली घर समझकर व्यवहार कर रही है। जब इस जीवात्मा का विवेक जागता है तो यह चैत्य पुरूष बनकर अन्तर्मुखी हो जाती है, इस संसार के साथ नित्य-अनित्य वस्तु के आधार पर व्यवहार करती है। अनित्य या नाशवान भोगों से दूर हट जाती है और नित्य व अनाशवान तत्व की खोज में लग जाती है।

क्षर पुरूष सारे विराट जगत की धुरी है इसलिए श्री अरविन्द गीता के इस क्षर पुरूष को अखिल ब्रह्माण्ड के सारे कर्मों का स्वामी अर्थात् लार्ड ऑफ वर्कस कहते हैं जो इस नाशवान संसार के अस्तित्व को एक डोर में बांधकर रखता है और इसको बिखरने से बचाता है। बिखरे हुए मणियों को माला की डोर में पिरोकर रखता है। सारा नाशवान अस्तित्व

एक तरफ से टूटकर दूसरी तरफ जुड़ता रहता है और दूसरी तरफ से टूटकर फिर किसी न किसी सिस्टम का हिस्सा बन जाता है। इतना परिवर्तनशील होने के बावजूद भी क्या कारण है कि यह विराट जगत अपने व्यवहार में नियम से कायम रहता है? यह इस क्षर पुरूष के कारण ही है जो परमात्मा का अंश होने के कारण हर जीव या कण के केन्द्र (हृदय) में विराजमान रहता है। यह पुरूष परमात्मा का अंश होने के कारण अनाशवान है इसलिए इस सृष्टि को नाश होने से या बिखरने से बचाता है। इसे क्षर पुरूष इसलिए कहा गया है कि यह लगातार अपना रूप बदलता रहता है लेकिन अपनी गहराई में परमात्मा की शक्ति की बारीक डोर से हमेशा बंधा रहता है और अज्ञानवश जीवन को आगे बढ़ाता रहता है। श्री अरविन्द के अनुसार चैत्य पुरूष (Psychic being) किसी भी जीव के हृदय में रहने वाली वह जीवात्मा है जो जाग चुकी है, अपने लक्ष्य के प्रति सचेत हो चुकी है और जिसकी यात्रा अपने परमात्म स्वरूप को पाने के लिए आरम्भ हो चुकी है। इस संसार में दिव्यता भरने और इसके रूपान्तरण के लिए इस चैत्य पुरूष की प्राप्ति व स्थापना अति आवश्यक है जो किसी भी वासना या अहंकार में लिप्त नहीं है, जो डिजायर-सोल या इगो-सोल बनकर कार्य नहीं करता है बल्कि इस नाशवान संसार में रहते हुए भी परमात्मा का यंत्र बनकर रहता है और दुनियां से व्यवहार करता हुआ भी इसमें लिप्त नहीं होता है-कुर्वन्नपि न लिप्यते। संसार के सारे कार्य करता हुआ भी अकर्ता है (किंचित न करोति) क्योंकि अब अहंकार उसका स्वामी नहीं है, मैं का भाव उसका स्वामी नहीं है बल्कि ज्ञान से पूरित अर्जुन की भांति अब श्री कृष्ण ही उसके रथवान हैं अर्थात् परमात्मा ही उसके हर कार्य को संभालता है, वह तो केवल परमात्मा के कार्य के लिए परमात्मा का एक पूर्ण व पवित्र यंत्र बन

गया है जिसके अन्दर से परमात्मा की इच्छा की पूर्ति होती है। उसके अन्दर से आने वाला हर विचार अब परमात्मा का विचार है, उसका हर कर्म परमात्मा के यज्ञ में आहुति है। हर समय अब उसके लिए मुहुर्त है, हर दिशा उसके लिए शुभ है। हर वस्तु, हर जीव और हर स्थान पर उसे परमात्मा ही परमात्मा या सतगुरू ही सतगुरू दिखाई देने लग जाता है।

जब हम अस्तित्व की दूसरी तह में उतरते हैं तो साधक का सामना मानसिक संसार की ताकतों से होता है जिसका व्यवहार क्षर पुरूष की चेतना के व्यवहार से एकदम विपरीत होता है। क्षर पुरूष की चेतना में विवेक और अन्त: प्रेरणा की कमी होने के कारण वह केवल फैलना चाहती है, इसके लिए उसे चाहे कुछ भी कीमत अदा करनी पड़े क्योंकि यहां माया व शैतान की ताकतों की मुख्यता होने के कारण यहां स्वार्थ सर्वोपरि है। एक शक्ति दूसरी शक्ति का शोषण करती है। जिस प्रकार एक स्थान पर यदि दस पौधे हैं तो जो मजबूत होते हैं वे दूसरों की कीमत पर अपना पोषण करते हैं, जिससे कमजोर पौधे मर जाते हैं। पशु को अपने जीवन निर्वाह के लिए खेत की फसल को खाना अच्छा लगता है इसलिए पशु की चेतना को आदमी की जरूरत से कोई मतलब नहीं है, और वह बेहिचक फसल को खाने लगता है या कोई ताकतवर राजनीतिज्ञ अपनी ताकत के बल पर स्वयं के पोषण के लिए दूसरों को दबाने लगता है, यह सब क्षर पुरूष की चेतना का अविवेकी व कामी स्वभाव है जो केवल स्वयं का पोषण करना चाहती है, उसका स्वभाव जीवात्मा का स्वभाव है जो अहंकार व इच्छा पुरूष बनकर कार्य करती है, चैत्य पुरूष बनकर नहीं। आतंकवाद या धर्म परिवर्तन जैसी समस्याएं इसी क्षर पुरूष की देन हैं जहां व्यक्ति अपने धर्म को सर्वोपरि समझकर दूसरे धर्म को दबाने लगता है, केवल अपना या

अपने विचार का पसारा करना चाहता है। यह ईश्वर की मायावी शक्ति या खुदा की शैतानी शक्ति का कार्य है। क्षर पुरूष का यही धर्म है कि वह अपनी शक्ति का किसी भी प्रकार से विस्तार करे और इस सृष्टि में अधिक से अधिक विभिन्नता पैदा करे ताकि इस ब्रह्माण्ड का लगातार विस्तार होता रहे क्योंकि विस्तार के लिए लगातार विभिन्नता का पैदा होना अति आवश्यक है। सृष्टि के कार्य को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने के लिए और इसमें नित नयी ताजगी बनाए रखने के लिए इसका परिवर्तनशील गुण और विभिन्नता पैदा करने का स्वभाव आवश्यक भी है लेकिन जब हम इन गुणों का दुरूपयोग आरम्भ कर देते हैं तो यही विभिन्नता और परिवर्तनशीलता का गुण एक मनुष्य को दूसरे से अलग कर देता है और उनके अन्दर नफ़रत पैदा कर देता है तथा यह पृथ्वी स्वर्ग के स्थान पर नरक की शक्तियों का केन्द्र बन जाती है परन्तु सृष्टि के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए क्षर पुरूष की इस विभिन्नता से परिपूर्ण चेतना का मौजूद रहना अति आवश्यक है। क्षर पुरूष के इस स्वभाव व गुण के कारण पैदा होने वाली बुराइयों को नियंत्रित किया जा सकता है यदि जीवात्मा के अन्दर चैत्य पुरूष का जन्म हो जाए।

दूसरे स्तर की चेतना का स्वभाव फैलना नहीं है बल्कि उस फैलाव पर ज्ञान और विवेक का अंकुश लगाना है। यह चेतना अन्तर्मुखी होकर कार्य करती है। जिस प्रकार एक बच्चे के पैदा होने के बाद शरीर बहुत तेज गति से बढ़ने लगता है और वह अधिकतर समय सोता ही रहता है। यह क्षर पुरूष की चेतना का विकास है लेकिन ज्यों ही उसके अन्दर मन व अहंकार का विकास होने लगता है, बुद्धि विकसित होने लगती है तो उसके शरीर की बढ़वार भी धीरे-2 कम होने लगती है, वह अधिक समय तक जागने लगता है अर्थात् उसके अन्दर होश की वृद्धि होने लगती है, चेतना का

विकास होने लगता है, यह उस बच्चे की दूसरे स्तर की ऊर्जा के विकास की तरफ यात्रा है। जब वह बच्चा बड़ा हो जाता है, उसकी परिवार व समाज के प्रति जिम्मेदारियां बढ़ जाती हैं तो उसका ज्ञान व विवेक अंग बढ़ने लगता है लेकिन साथ ही उसके शरीर की शक्ति कमजोर पड़ने लगती है। शरीर व इन्द्रियों का पसारा रूकने लगता है। अत: जब दूसरे स्तर की चेतन ऊर्जा विकसित होती है तो पहले स्तर की यांत्रिक ऊर्जा के फैलाव पर अंकुश लग जाता है क्योंकि दोनों तरह की ऊर्जा का स्वभाव व गुण एक दूसरे के विपरीत है लेकिन दूसरे स्तर की चेतन ऊर्जा का विकास पहले स्तर की अचेतन यांत्रिक ऊर्जा की कीमत पर है अर्थात् पहले स्तर की अचेतन स्वयंचालित यांत्रिक ऊर्जा का ही दूसरे स्तर की चेतन ऊर्जा के अन्दर रूपान्तरण है, उसी ऊर्जा का एक रूप से दूसरे रूप में बदलाव है। शरीर की ऊर्जा का ज्ञान (मन) की ऊर्जा में परिवर्तन है। यह ज्ञान का विकास गीता में कहे गए अक्षर पुरूष की चेतना की अभिव्यक्ति है। यही अक्षर पुरूष सृष्टि के सारे ज्ञान का स्रोत है। श्री अरविन्द गीता के इस पुरूष को लार्ड ऑफ नालेज अर्थात् ज्ञान का स्वामी कहते हैं जिसके जानने से सारे ज्ञान स्वत: ही मनुष्य के अन्दर प्रकट होने लगते हैं, यस्मिन विज्ञाते सर्वम् विज्ञातम्। परन्तु हर तरह के ज्ञान-विज्ञान का स्रोत होने के कारण यह अक्षर पुरूष मनुष्य के लिए दातक है तो घातक भी है, लाभ के अवसर प्रदान करता है तो उस ज्ञान का दुरूपयोग होने पर अनिष्टकारी भी है और मनुष्य की बरबादी का कारण भी बन सकता है

यह पुरूष स्वयं के अन्दर सर्वज्ञानी है और किसी भी जीव या प्राणी की हानि व अहित करना इसका स्वभाव नहीं है लेकिन जब यही ज्ञान नीचे आकर क्षर पुरूष (सामान्य चेतन) की चेतना के साथ

संयोग करता है तो मनुष्य आसक्ति के बंधन में बंध जाता है और अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दूसरों की हानि करने लगता है। श्री अरविन्द अक्षर पुरूष को आत्मा या उर्ध्वमन (Overmind) का नाम देते हैं जो समस्त भूतों की आत्मा या सैल्फ बनकर उनकी संभाल करता है और सृष्टि के कार्य को नियमित करने में मदद करता है ताकि ज्ञान की उत्पत्ति होने के कारण हजारों अशांति व क्लेश की शक्तियों के द्वारा ज्ञान का दुरूपयोग न किया जा सके और सृष्टि के कार्य में बाधा उत्पन्न न हो। अक्षर पुरूष का यह ज्ञान स्वंय में पवित्र है लेकिन क्षर पुरूष के साथ जब इसका योग होता है तो यह ज्ञान व्यक्ति की इच्छा व कामयुक्त साधना के अनुसार फल देता है जिसमें इन्द्रजाल व माया के छल के भिन्न-2 विषैले रूप पैदा हो जाते हैं और व्यक्ति छलकपट व मायावी संसार में लिपटा हुआ एक दूसरे की हानि करने लगता है। अपने स्वार्थ के अनुसार धर्म के अर्थ निकालने लगता है तथा दूसरे के धर्म को नफरत की नजर से देखता है। अक्षर पुरूष (विशेष चेतन) का यह अनुभव सहस्रार का अनुभव है। यहां से ज्ञान की हजारों धार पैदा होती हैं जिनका स्वभाव व गुण भिन्न-2 होता है और जो नीचे की क्षर पुरूष की रचना में जाकर अपने स्थूल रूप व गुण में प्रकट होती हैं जिससे इस स्थूल सृष्टि का कार्य आगे बढ़ पाता है। इनमें से कोई धारा तो सुख उत्पन्न करती है और कोई धारा दु:ख व क्लेश पैदा करने में सहायता करती है। विशेष चेतन के इस संसार में ब्रह्म की चेतना मुख्य होने के साथ माया की चेतना भी उसका गौण रूप में अभिन्न अंग है इसलिए अपने आप में इस पुरूष का ज्ञान दोषमुक्त होने के बाद भी स्वप्न की लीला पैदा करता है, माया व छल

को पैदा करता है। अत: श्री अरविन्द इस स्तर के रूपान्तरण को मनुष्य के लिए बहुत ही भयंकर मानते हैं जो मनुष्य की संतति को बरबादी की तरफ धकेल सकता है लेकिन चिंता का विषय है कि सारे धर्म व धर्मगुरू इसी चेतना के आधार पर टिके हुए हैं। जब कोई साधक अन्तर में किसी गुरू, अवतार या पैगम्बर के दर्शन कर लेता है तो उसी को अंतिम मंजिल मान लिया जाता है जबकि यह केवल उस व्यक्ति के अन्दर विराजमान रूचि व इष्ट के प्रति गहरे लगाव का परिणाम है इसलिए यहां का दर्शन क्षर पुरूष की आसक्तियुक्त चेतना का परिणाम है। सारे ज्ञान शास्त्र और सांसारिक धर्म इसी ज्ञान (अक्षर) पुरूष की आंशिक धार की पैदायश हैं और क्षर पुरूष की कर्मभूमि से उत्पन्न हुए हैं इसलिए कोई भी शास्त्र व धर्म उस पौधे की तरह है जिसका बीज भूमि और बाहरी वातावरण का प्रभाव शोषित किए बगैर पौधा नहीं बन सकता है और पूरा पौधा बाहरी वातावरण (क्षर पुरूष) की ऊर्जा का रूपान्तरित रूप है। इसी प्रकार शास्त्र भी समय की आवश्यकतानुसार लिखे गए हैं, इसलिए सम्भव है कि ये शास्त्र आज की चेतना के विकास में सहायक होने के बजाय बाधक बन जाएं क्योंकि उस समय की आवश्यकता और परिस्थितियां आज से भिन्न थी। अत: शास्त्र मनुष्य के लिए दिशा-निर्देशन में सहायक हो सकते हैं लेकिन मंजिल नहीं बन सकते हैं। अंश से ही पूर्ण की तलाश की जा सकती है, उसके बारे में कुछ जाना जा सकता है। बूंद के ज्ञान से समुंद्र का, किरण के ज्ञान से सूर्य का, मिट्टी के एक परमाणु या एक ढ़ेले के ज्ञान से पृथ्वी का ज्ञान व जानकारी सम्भव है, इसी प्रकार आत्मा के अन्दर झांकने से परमात्मा का ज्ञान संभव है। शास्त्र, मन्दिर या चर्च की मूर्ति जो

स्वयं नाशवान हैं और तूफान या बाढ़ का हल्का सा बहाव सहन नहीं कर सकते हैं, फिर उस अनाशवान, असीम और अनंत का भेद कैसे दे सकते हैं, यह सम्भव नहीं है।

हम सभी अक्षर पुरूष के उस ज्ञान तक सिमट कर रह गए हैं जो क्षर पुरूष की चेतना में लिप्त है। सपने से आगे सुषुप्ति के संसार में जाने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं जहां सारे रंग-रूप और आकार ध्वस्त हो जाते हैं लेकिन यह अस्तित्व के तीसरे स्तर की चेतना में प्रवेश करने के बाद ही सम्भव है। श्रीमद्भगवद् गीता ने इसे पुरूषोतम का अनुभव कहा है जहां सारा ज्ञान और सारे धर्म परमात्मा की चेतना में जाकर विलीन हो जाते हैं इसीलिए श्री कृष्ण अर्जुन को सारे धर्म आवरण उतारकर अपनी शरण में आने के लिए निमंत्रण देते हैं-परित्याज्य सर्वधर्मा। सारे कर्म और सारा ज्ञान इस चेतना के भण्डार में समाकर अस्तित्वहीन हो जाते हैं। श्री कृष्ण कहते हैं कि केवल प्रेम और भक्ति ही इस महाचेतन के समुंद्र में प्रवेश कर सकते हैं क्योंकि यहां कोई विचार नहीं है, कोई रचना नहीं है। रचना या कर्म तभी तक अपना अस्तित्व रख सकते हैं जब तक विचार मौजूद है, मन का संसार है, वह मन चाहे व्यक्तिगत मन है या ब्रह्मण्डी मन। श्री अरविन्द पुरूषोतम के इस अनुभव को अतिमन (Supermind) की अनुभूति कहते हैं जिसे केवल प्रेम द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वे इसे लार्ड ऑफ लव एण्ड डिवोसन अर्थात प्रेम और भक्ति का स्वामी कहते हैं। चैत्य पुरूष के अन्दर वे इसी अतिमन की चेतना के अवतरण को स्वीकार करते हैं इसलिए अतिमानसीकरण के द्वारा ही वे चैत्य पुरूष के माध्यम से रूपान्तरण की भूमि तैयार करने के पक्षधर हैं जिससे अतिमन या सतपुरूष की चेतना का आनन्द और

दिव्यता इस भौतिक संसार के कण-2 में बह सके और इस नाशवान संसार में भी अमृत और अमरता का रसपान किया जा सके। अतिमानसीकरण की अनुभूति के बाद ही चैत्य पुरूष की स्थापना होती है जब जीवात्मा का संबंध सीधा अतिमन के साथ जुड़ जाता है। कुंए का संबंध असीम और अनन्त समुंद्र के स्रोत के साथ स्थापित हो जाता है, यही है आत्मा की प्राज्ञस्थिति।

जहां भी ध्यान की महता है वहीं पर आत्मा की आंतरिक यात्रा का वर्णन अवश्य मिलता है। आन्तरिक यात्रा में कुछ पड़ाव आते हैं जिन्हें चक्र या मण्डल कहा जाता है, जहां पर परमात्मा की शक्ति का ठहराव या स्थिति होती है। इस शक्ति को कुण्डलीनी शक्ति, सर्पिणी, पराप्रकृति, परामाया, पराचेतना आदि नामों से पुकारा गया है जो परमात्मा की ताकत बनकर संसार और ब्रह्माण्ड की रचना करती है। राधास्वामी पंथ में इस शक्ति को राधा कहा गया है जिसकी धार स्वामी अर्थात् कुल्ल मालिक से निकलती है और अनेक स्थानों पर अपनी शक्ति का ठहराव करती हुई सच्चखण्ड से उतरकर ब्रह्मण्ड और पिण्ड (भौतिक संसार) की रचना करती है। पिण्ड, ब्रह्मण्ड और सच्चखण्ड, ये तीनों स्थूल, सूक्ष्म और कारण चेतना का विस्तार हैं अर्थात् पिण्ड (सामान्य चेतन), ब्रह्मण्ड (विशेष चेतन)और सच्चखण्ड (महाचेतन) परमात्मा की शक्ति का तीन स्तर पर विस्तार है। पिण्ड यह स्थूल रचना है जिसमें सारे विराट जगत का पसारा है, ब्रह्मण्ड में इस विराट जगत की सूक्ष्म ताकत निवास करती है जिस प्रकार हमारे शरीर में मन सूक्ष्म ताकत बनकर मौजूद रहता है और शरीर के सारे कार्य को संचालित करता है। सच्चखण्ड सतपुरूष अर्थात् सृष्टि के कुल मालिक का लोक है जहां पर परमात्मा की परम् शुद्ध ताकत का निवास है। पिण्ड में माया की धार मुख्य है, ब्रह्म की धार गौण (कम) है और सतपुरूष

की धार (जीवात्मा) अति कमजोर है। मन सूक्ष्म ताकत बनकर मौजूद रहता है और शरीर के इस पिण्ड लोक में जीवात्मा सतपुरूष का अंश है। मन ब्रह्म का प्रतिनिधित्व करता है और शरीर माया का रूप है जिसमें वासनाएं निवास करती हैं। शरीर और मन का अस्तित्व आत्मा के कारण है, इसी प्रकार इस भौतिक संसार और ब्रह्मलोक का अस्तित्व इनके अंदर सतपुरूष की धार की मौजूदगी के कारण है। आत्मा जो परमात्मा की शुद्ध ताकत का अंश है, इस स्थूल संसार में आकर उसकी अधिकतम ताकत मन और शरीर के रूप में तबदील हो गई है। वही एक ताकत या चेतन ऊर्जा तीन भागों में विभक्त हो गई है जिस प्रकार बीज की ऊर्जा पौधे के तने और पत्तों में तबदील हो जाती है ताकि बीज का भविष्य सुरक्षित हो सके।

पौधे के अन्दर बीज समाया रहता है, लेकिन हमें दिखाई नहीं देता है। दूध के अन्दर घी समाया रहता है लेकिन प्रयत्न करके इसे निकाला जाता है। इसलिए कहा गया है-

ज्यों तिल में तेल और चकमक में आग,
तेरा प्रितम तुझमें तू जाग सके तो जाग।

स्पष्ट है कि शरीर, मन व आत्मा एक ही ताकत के तीन बिन्दू हैं, एक बाहरी (शरीर), दूसरा मध्यम (मन) और तीसरा भीतरी (आत्मा) अस्तित्व है। इसी प्रकार यह संसार और ब्रह्माण्ड परमात्मा की शक्ति की स्थूल और सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्ति है। ध्यान द्वारा शरीर और मन का मंथन किया जाता है ताकि शारीरिक और मानसिक शक्तियां जो इस स्थूल और सूक्ष्म जगत का अंश होकर शरीर और मन की रचना करती हैं उनको चित्त के ऊपर साक्षात प्रकट किया जा सके, उनके स्वभाव को जाना जा सके और आत्मा (पुरूष) को उनका ज्ञान

हो सके जिससे आत्मा प्राज्ञस्थिति के अनुभव में जी सके। केवलज्ञान को उपलब्ध हो सके, परमज्योति में उसकी स्थिति हो सके। यही अनुभूति पतंजलि ऋषि, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, शंकराचार्य के आध्यात्मिक अनुभव और षड्दर्शन के मोक्ष व निर्वाण की कहानी का वर्णन करती है, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि का भेद खोलती है।

कुण्डलीनी और तांत्रिक योग के अनुसार इस शरीर में छः चक्र हैं जहां सूक्ष्म तौर पर आत्मा की शक्ति ठहरकर कार्य करती है। यही छः चक्र शरीर की छः प्रणालियों का नियंत्रण करते हैं जिनसे शरीर का कार्य सुचारू रूप से चलता है। सबसे ऊपर का चक्र (आज्ञा चक्र) दोनों आंखों के मध्य में स्थित है जहां पर गहनतम ऊर्जा केन्द्र पर जीवात्मा की स्थिति है जो नीचे के सभी चक्रों व प्रणालियों का नियंत्रण करती है। इन छः चक्रों के ऊपर सिर की चोटी के स्थान पर सहस्रार का चक्र है जो परमात्मा का धाम है। राधास्वामी योग के अनुसार इस सृष्टि के अट्ठारह मण्डल हैं जिनके अन्दर परमात्मा की शक्ति (राधा) अधिकता या न्यूनता के साथ विराजमान रहती है। स्थूल रचना के छः चक्र हैं जिनमें राधा की शक्ति माया रूप बनकर मौजूद रहती है और स्वामी की यह शक्ति (राधा) इस स्थूल संसार में आकर स्थूल रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार ब्रह्मलोक में ब्रह्म की शक्ति बनकर कार्य करती है और सच्चखण्ड में पराचेतना बनकर सतपुरूष के अन्दर समा जाती है और उसी का रूप बन जाती है। जीवात्मा राधा की ही एक किरण है जहां इसने व्यक्तिगत (Individual) रूप धारण कर लिया है। इसलिए सबसे पहले जीवात्मा कुल्ल माता अर्थात् राधा (प्रकृति) की धार के अन्दर जाकर मिलती है और फिर मंजिल-दर-मंजिल चढ़ती हुई सृष्टि के गहनतम अस्तित्व के स्वामी के अन्दर समाकर उसी का रूप धारण कर लेती है और संसार में रहते हुए सतपुरूष का शुद्ध व पवित्र यंत्र बनकर कार्य करती हुई परमात्मा के अनादि और

अनंत स्रोत से भी जुड़ी रहती है। इस यात्रा में आत्मा (सुरत) सतगुरू के नूरी (प्रकाश) रूप को देखती हुई और अनहद नाद (शब्द) को सुनती हुई अट्ठारह मंजिलें पार करती है। छः मंजिलें स्थूल लोक की, छः सूक्ष्म (ब्रहालोक) और छः ही कारणलोक (सच्चखण्ड) की हैं और यह सारी यात्रा इस शरीर के अन्दर ही अन्तर्ध्यान होकर की जाती है। बाहर के साधनों की पूजा या ध्यान से आत्मा को अपने निजरूप (सतपुरूष) की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

राधास्वामी नाम धुनात्मक है वर्णात्मक नहीं। इसी प्रकार ओ३म्, सोहम् आदि धुनात्मक नाम हैं। राधा आत्मा का नाम है, इसे ही सुरत कहा जाता है और स्वामी परमात्मा का नाम है जिसे शब्द कहा गया है, इसी शब्द को पकड़कर आत्मा ऊपर चढ़ती है, इसलिए राधास्वामी योग को सुरत-शब्द योग भी कहा जाता है। हमारे शरीर में हमेशा शब्द-धुन होती रहती है जो कभी बंद नहीं होती और इसी धुन को पकड़कर आत्मा धीरे-2 यात्रा करती जाती है और अपनी अंतिम मंजिल पर जाकर स्वामी (आदि शब्द) के अन्दर समा जाती है। सुरत और शब्द का मेल हो जाता है, जहां कहने-सुनने की जरूरत नहीं रहती है, जीभ गिर जाती है, आंखे ऊपर चढ़कर ऊपर की तरफ खिंच जाती हैं। मृत्यु के अनुभव के अन्दर से जाकर नवजीवन की प्राप्ति होती है जो जीते-जी-मरने का अभ्यास है। यही है आत्मा का सतगुरू या परमात्मा के अन्दर पुनर्जन्म। आत्मा के इस अनुभव का वर्णन करते हुए कबीर साहब कहते हैं-

सहजै ही धुन होत है हरदम घट के माहि।
सुरत-शब्द मेला भया मुख की हाजत नाहि।।

अतः परमात्मा की शक्ति तीन स्तर पर व्याप्त रहती हुई इस सृष्टि के कार्य में स्वयं कार्य बनकर, कार्यवाहक बनकर, इस विराट जगत की अध्यक्ष बनकर सृष्टि के हर कण में रमी हुई रहकर भी इससे अलग रहती

है। अचेतन जगत में यह स्वयं पदार्थ रूप बनकर बेहोश होकर सो रही है तो चेतन जगत में अर्धचेतन और चेतन ऊर्जा बनकर सृष्टि के कार्य को संभाल रही है। इसके साथ-2 हर एक कण या हर अस्तित्व के केन्द्र में बाहर की हर हलचल से अनजान रहती हुई, हर कर्म और हर ज्ञान से अनभिज्ञ रहती हुई विराजमान रहती है, घनीभूत (Dense) होकर स्वयं के अन्दर ही स्वयं के आनन्द में समाई रहती है और बाहर की सारी ऊर्जा उसी के आधार पर टिकी रहती है, सारे अस्तित्व उसी के आधार पर खड़े हैं। यही गहनतम चेतना परमात्मा का धाम है, धर्म की आत्मा है और यहीं से सारा ज्ञान-विज्ञान और संसार प्रकट होता है। इसी केन्द्रीय ऊर्जा का अलग-2 स्तर पर अलग-2 नाम व काम से अवतरण होता है और सृष्टि के हर छोटे से छोटे कण और बड़े से बड़े अस्तित्व में यह तीनों स्तर की ऊर्जा हर समय व्याप्त रहती है। सबसे बाहर परिधि पर यह चेतन ऊर्जा कमजोर होती है, इसके अन्दर भटकाव व बिखराव अधिक होता है। दूसरे स्तर पर इसका खिंचाव केन्द्र की तरफ होने लगता है। यह ऊर्जा केन्द्र और परिधि के बीच में झूलती रहती है। कभी अन्दर की तरफ और कभी बाहरमुखी होकर परिणाम देने लगती है। जब अन्तरमुखी होती है तो केन्द्र की ऊर्जा में समाकर आनन्दरूप बन जाती है, आत्मिक हो जाती है और जब बाहरमुखी होती है तो संसार की रचना करती है तथा उसका भोग करती है। जिस प्रकार यह मन जब आत्मा की तरफ झुकता है तो यह रूहानी अर्थात् आत्मरूप हो जाता है और जब बाहरमुखी होकर इन्द्रियों का संग करता है तो यह मन नीचे के स्तर की ऊर्जा का रूप बनकर जिसमानी बन जाता है, भोग रूप बन कर अपनी शक्ति का ह्रास करता है। इसी प्रकार एक छोटे से छोटे परमाणु के अन्दर और बड़े से बड़े अस्तित्व के

अन्दर यह त्रिमुखी शक्ति हर समय किसी न किसी रूप में क्रियाशील बनी रहती है। सृष्टि की नई रचना करती रहती है, पोषण करती रहती है और साथ-2 संहार भी करती रहती है। इतना अवश्य है कि जब यह ऊर्जा बाहरमुखी अधिक हो जाती है तो इसका संबंध केन्द्र की ऊर्जा के साथ कमजोर पड़ने लगता है, आत्मिक मूल्यों की हानि होने लगती है और स्वार्थ बढ़ने लगता है। ऐसे समय में इसके बिखराव या विनाश की संभावना अधिक हो जाती है और परिणामस्वरूप मनुष्य को भुकम्प और भीषण तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि सृष्टि का सारा पसारा एक ही ऊर्जा का प्रकटीकरण है। कहीं वह ऊर्जा अचेतन बनकर तो कहीं चेतन और कहीं महाचेतन बनकर विराजमान है। उसी एक ऊर्जा का भिन्न-2 रूपों में रूपान्तरण है। आत्मा, मन और शरीर या धर्म, विज्ञान और संसार उसी एक महाचेतन सत्ता का अलग-2 स्तर पर अलग-2 रूप में प्रकटीकरण है। अलग-2 स्तर पर उसी ऊर्जा के अलग-2 कार्य हैं। एक स्तर पर वही ऊर्जा स्वयं का विरोध करती है तो दूसरे स्तर पर सहायक बनकर उसी विरोधी ऊर्जा की रक्षा करती है। जब यह शक्ति बनकर सहायता करती हुई प्रतीत होती है तो हम इसे परमात्मा, खुदा या गौड़ कहने लगते हैं और जब यह हमारी इच्छा के विपरीत कार्य करती है तो हम इसे ही शैतान, माया और काल कहते हैं लेकिन अपने वास्तविक व गहरे रूप में न तो यह भगवान है और न ही शैतान है बल्कि इस सृष्टि की जन्मदाता है जिसे कोई भी नाम देना बेमानी है। किसी भी गुण व धर्म में बांधना उसकी तोहीन है। सभी हदों में रहती है लेकिन सभी हदों के पार उसका आशियाना है। सभी नाम और सभी रूप उसी के हैं लेकिन किसी भी नाम और रूप में उसे बांधना उसकी ताकत को सीमित करना है।

अब प्रश्न उठता है कि धर्म और परमात्मा का वह साधारण रूप क्या है जो हमारी पहुंच में हो और जिसे पकड़कर एक साधारण व्यक्ति चल सके तथा उस परमशक्ति के अनुभव में सहभागी बन सके। परमात्मा के असीम रूप की प्राप्ति असीम साधन द्वारा ही की जा सकती है। संसार में ऐसी कौन सी चीज है जो परमात्मा की तरह सभी बंधनों में बंधी हुई भी निर्बन्धी है? ऐसी शक्ति केवल प्रेम है जो सभी सीमाओं में रहते हुए भी सभी हदों को पार कर जाता है। प्रेम हमेशा अपनी ओर खींचता है लेकिन सच्चा प्रेम इसकी कीमत वसूल नहीं करता। प्रेम केवल देना जानता है। लेना या इच्छा जताना प्रेम का गुण नहीं है। प्रेम केवल अपने प्रेमी की खुशी चाहता है और उसी के लिए जीता है। प्रेम कोई सुधार करने की चेष्टा नहीं करता लेकिन प्रेम से बड़े-2 सुधार फलित होते हैं। प्रेम यह नहीं देखता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, ब्राह्मण है या शूद्र, प्रेम तो केवल न्यौछावर होना जानता है। स्वयं के लिए जीना प्रेम की फितरत नहीं है। उसके लिए दूसरों का कल्याण सर्वोपरि है। स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, ईसा मसीह, हुजूर सालिगराम जी महाराज, कबीर, नानक आदि सभी संत परमात्मा को प्रेम का ही रूप मानते हैं। सारा ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुएं और इसके सारे अस्तित्व इसी प्रेम की खिंचाव शक्ति के कारण ही एक दूसरे के चारों तरफ अति तीव्र गति से चक्कर लगा रहे हैं। अत: भौतिक संसार में रहते हुए प्रेम ही सबसे बड़ा धर्म है और प्रेम ही परमात्मा का प्रकट रूप है जिसके साथ हमारा स्थूल संबंध स्थापित हो सकता है और जो हमें असीम और अनन्त से मिलवा सकता है अर्थात् परमात्मा के सूक्ष्म और कारण रूप का साक्षात्कार करवा सकता है।

प्रेम को पौधा भी जानता है, पशु भी प्रेम के हाथ को स्वीकार करता है, इसलिए प्रेम व्यावहारिक धर्म है, सार्वभौमिक धर्म है जो शाश्वत धर्म और धर्मे-हकीकत से हमारी मुलाकात करवा सकता है। पशु, पौधे और कोई भी अचेतन पदार्थ हमारे किसी धर्म को नहीं जानते। हमारे किसी शास्त्र का ज्ञान उनके काम का नहीं है, हमारा कोई भी तीर्थ स्थल ऐसा नहीं है जो उन्हें शांति दे सके, केवल प्रेम की भाषा इनकी मौन स्वीकृति है। अत: सार्वभौमिक धर्म वही हो सकता है जो अस्तित्व के सभी स्तर के भागीदार सदस्यों को जीवन दे, उनके अन्दर जीवन देने वाली हलचल पैदा करे, उन्हें बिना कुछ कहे अपनी तरफ खिंचकर चले आने के लिए मजबूर करे। ऐसा धर्म कभी भी सार्वभौमिक धर्म नहीं हो सकता है, खुदा का धर्म नहीं हो सकता है जो हिन्दू के लिए अलग हो, मुसलमान या ईसाई के लिए अलग, पौधे के लिए अलग हो और पशु के लिए अलग। प्रेम एक सांझी व्यवस्था है जो सृष्टि के कण-2 में व्याप्त है और कण-2 उसके आनन्द में झूम रहा है। प्रेम की आत्मा की खोज और प्राप्ति करना हर कण व हर जीव का स्वत: जनित स्वभाव है और नियति भी। इसलिए प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग है और प्रेम ही मंजिल। जब ऐसा प्रेम परवान चढ़ता है तो धैर्य, क्षमा, सहनशीलता, विवेक, चरित्र, दर्शन, इन्द्रिय निग्रह, दया, संवेदनशीलता इत्यादि गुण स्वयं ही व्यक्ति की तरफ वसीयत बनकर आने लगते हैं तथा उसके अंग-प्रत्यंग में समाने लगते हैं और यही परमात्मा के गुण हैं जो व्यक्ति को परमात्मरूप बना देते हैं।

राधास्वामी।

जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न

- क्या धर्म रोजी-रोटी दे सकता है?
- क्या अध्यात्म से दु:खों का छुटकारा हो सकता है?
- क्या अध्यात्म धन और आश्रमों का मोहताज हो गया है?
- क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है?
- क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है?
- क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है?
- क्या परमात्मा अमीर लोगों की धरोहर बन गया है?
- अध्यात्म क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?
- क्या अध्यात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे के विरोधी हैं?
- क्या शरीर, मन व आत्मा अलग-अलग हैं?
- कुण्डलीनी जागरण क्या है?
- अनहद शब्द व धुन में क्या अन्तर है?
- परम्परावादी और आत्मनिष्ठ धर्म में क्या अन्तर है?
- कर्मकाण्ड बन्धन व दु:ख का कारण क्यों बन जाता है?
- सभी धर्मों की उत्पत्ति मानसिक संसार से है, कैसे?
- अच्छी संगत से बुरे कर्म कैसे कट जाते हैं?
- सतगुरू सूली का दर्द सूल में कैसे बदल देता है?
- सिद्ध पुरूष की इच्छा शक्ति मजबूत क्यों हो जाती है?
- सृष्टि की प्रलय व शरीर की मृत्यु का क्या सम्बन्ध है?
- अभ्यास की अट्ठारह मंजिलें कौन सी हैं?
- क्या भाग्य को बदला जा सकता है?
- क्या मन व अंहकार वास्तव में बुरे हैं?
- अध्यात्म के लिए विशाल दृष्टि जरूरी क्यों?
- सुरत-शब्द योग का मार्मिक रहस्य क्या है?
- व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है?
- ध्यान से समस्याओं का समाधान कैसे मिलता है?
- ध्यान से संसार का विनाश भी हो सकता है, कैसे?
- प्रेतात्मा व देवात्मा के प्रकट होने का कारण व अर्थ
- उत्पत्ति व प्रलय का वैज्ञानिक व अध्यात्मिक आधार क्या है?
- नाम व ध्यान का विज्ञान क्या है?
- कामधेनू गाय व कल्ववृक्ष की प्राप्ति क्या है?
- असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कैसे हो?

.....इत्यादि प्रश्नों के उत्तर जानिऐ?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र

पुस्तक सूची

1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. सम्यक समाधि : आत्मिक सफर की कहानी
6. पुरूष-प्रकृति
7. ईसा-मसीह कौन हैं?
8. युद्ध और जीवन दर्शन
9. अवतार अवतरण रहस्य
10. अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?
11. प्रेम और भक्ति का शिखर
12. सत्य और धर्म का अनुभव क्या इसी जन्म में संभव है?
13. टूटते रिश्ते बढ़ता अंधविश्वास व अध्यात्म
14. बच्चों पर सत्संग का प्रभाव
15. विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान
16. पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य
17. क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?
18. मनुष्य के लिए अध्यात्म जरूरी क्यों ?
19. आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य